ॐ

राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

पावन हों शिक्षा संस्कार
शुद्ध आचरण का आधार

काम काज हो या व्यापार
सभी जगह अच्छा व्यवहार

मित्र पड़ोसी घर परिवार
संबंधों में निश्छल प्यार

यदि हो पाएं तो संसार में
होगा सुख शांति प्रसार

वर्ष 65 | जनवरी-मार्च 2017 | अंक 1

रामाश्रम सत्संग, गाज़ियाबाद

विषय सूची

क्रमांक **पृष्ठ**

1. भजन 01
मीराबाई

2. श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्या 02
लालाजी महाराज

3. यम-नियम का पालन आवश्यक है 07
डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

4. साधन 13
अनमोल वचन

5. सदाचार से पात्रता, पात्रता से प्रेम 15
परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब

8. राबिया 29
प्राचीन मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र

राम ॐ संदेश

संस्थापक

ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

संरक्षक

ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी

सम्पादक

डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

(सर्वोच्च आचार्य एवं अध्यक्ष)

वर्ष 65 जनवरी–मार्च 2017 अंक–1

संतों की होली

फागुन के दिन चार.....होरी खेल मना रे।
बिन करताल पखावज बाजै,
अणहद की झंकार रे।
बिन सुर राग छतीसूँ गावै,
रोम रोम रणकार रे।
उड़त गुलाल लाल भयो अंबर,
बरसत रंग अपार रे।
घटके सब पट खोल दिए हैं,
लोक लाज तज डार रे।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर,
चरण कँवल बलिहार रे।

– *मीराबाई*

परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज

श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्या

(पिछले अंक से आगे)

40

कविं पुराणमनुशासितारं
अणोरणीयं समनुसमरद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपं
आदित्यवर्ण तमसः परस्तात्।। **8 ।16।**

अर्थः– सर्वज्ञा, अनादि, सबके नियंता, अणोअणीयान सबके पालक, अचित्य, सूर्य के सहृदय, तम से परे का स्मरण करें।

भावार्थः– यहाँ निराकार परब्रह्म जो सर्वज्ञाता है, जिसका न आदि है न अंत है, जो सबका नियंता है, जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है (तभी तो सर्वव्यापक, सर्व पालक, अनादि हो सकता है), सब का पालने वाला, रूप रहित, सर्वव्यापक सूर्य (आकाश) के समान (दिव्य) है तथा तम से परे यानी प्रकाश स्वरूप है का ध्यान करें। यह प्रकाश योग की व्याख्या है।

41

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यःप्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्। **8 ।131।**

अर्थः– ओम एक अक्षर ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और मेरा चिंतन करता हुआ जो देह त्याग करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है।

भावार्थः– प्रणवाक्षर ''ॐ'' रूपी ब्रह्म का जाप करता हुआ (अजप जाप) और प्रभु का ध्यान करता हुआ यदि देह त्याग करें तो परम गति को प्राप्त हो। ऐसा ही श्रीमद्भगवात में भी 2–1–17 में वर्णित है।

42

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् 9 ।11।

अर्थः– मेरे परम भाव को न जानने वाले मूर्ख लोग शरीरधारी मुझको सब जीवों के महान ईश्वर के रूप में नहीं जानते।

भावार्थः– यहाँ प्रभु उनको मूर्ख कह रहे हैं जिन्होंने भगवान कृष्ण को केवल शरीरधारी मनुष्य ही समझ रखा है। वे उनके अवयक्त, सर्वाधार, सर्वेश्वर रूप को नहीं पहचानते।

43

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ते यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्।। 9 ।15।

अर्थः– अन्य भक्त मुझको (आत्म) ज्ञान यज्ञ द्वारा एकी भाव से पूजन करते हुए मुझ विराटस्वरूप की अलग प्रकार से उपासना करते हैं।

भावार्थः– यहाँ प्रभु अपने विश्व रूप की तनिक झलक दिखा रहे हैं कि उस रूप की कुछ ज्ञानी लोग उपासना करते हैं। जो उस रूप को नहीं जानते उन्हें तो मूर्ख पहले ही कह चुके हैं।

44

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च।। 9।17।

अर्थः– इस जगत का माता, पिता, पितामह, धाता ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद तथा जानने योग्य पवित्र ओंकार मैं हूँ।

भावार्थः– यहाँ भगवान स्वयं को धारक, पालक, शिक्षक, (माता, पिता, पितामह), सर्वज्ञान (वेदों का) और अंततः पवित्र ओंकार कहते हैं यानी अनन्य ज्ञान एवं पवित्र प्रणव प्रभु की दिग्दर्शिता है।

45

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते।। **9।21।**

अर्थः– वे उस विशाल स्वर्गलोक को भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में वापस आते हैं। इस प्रकार तीनों वेदों में कहे सकाम कर्मी बार–बार आते जाते हैं।

भावार्थः– मन की सारी इच्छायें पूर्ण हों ऐसी अवस्था स्वर्ग है और दुःखों का तांता लगा रहे वही मृत्युलोक है। मनुष्य (सकामी पूजक) इन्हीं में आते–जाते रहते हैं। अच्छे पुण्यों का प्रताप ही स्वर्ग ले जाता है। पुण्यों का खाता समाप्त होने पर वापस। इसीलिए कभी–कभी दुष्कर्मी बहुत सुखी दिखते हैं क्योंकि वो अपने पिछले पुण्य कर्मों का खा रहे होते हैं।

46

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पुर्यपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। **9।22।**

अर्थः– जो भक्त अनन्य भाव से मेरा चिंतन करके उपासते हैं, उन नित्य प्रेमियों को मैं योग (भक्ति) और क्षेम (रक्षा–शरण) प्रदान करता हूँ।

भावार्थः– यहाँ प्रभु निरन्तर चिंतन की महिमा कह रहे हैं कि जिन भक्तों की ऐसी निरंतर लौ लग जाती है उनको मैं स्वयं को प्राप्त करवा देता हूँ (जिससे मेरी भक्ति–योग तथा रक्षा स्वयं प्राप्त हो जाती है।)

47

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् **9 ।23।**

अर्थः– हे अर्जुन! जो भक्तगण श्रद्धा से भी दूसरे देवताओं को पूजते हैं वे मुझको ही पूजते हैं किन्तु अविधि पूर्वक।

भावार्थः– दूसरे देवताओं की पूजा भगवान ने अविधि पूर्वक बताई है क्योंकि वे इच्छा तो पूरी कर देंगे किन्तु जीवन लक्ष्य यानी अनंत सुख जो केवल परमात्मा में मिलने पर मिलता है, वो नहीं मिलता जैसे स्कूल के किसी मास्टर से मिलने पर वो बात नहीं बनती जो प्रिंसिपल से मिलने पर बन जाती है। भगवान ने अन्य देवताओं की पूजा से हटाने के लिए ही गोवर्धन पर्वत की लीला की थी।

48

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।। **9।26।**

अर्थः–जो मेरे लिए प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल भी अर्पण करे तो मैं उसे (प्रेमपूर्वक) स्वीकार करता हूँ।

भावार्थः– परमात्मा की सहृदयता और सर्वज्ञता का यहाँ चित्रण है कि वे सिर्फ प्रेम (सच्चे मन के) भूखे हैं। ऐसे प्रेम से अगर बड़ा यज्ञ अनुष्ठान न बने तो कभी फूल, पत्ती, जल भी अर्पण कर दें तो वह भी बड़े चाव से स्वीकार करते हैं।

49

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् **।9 ।32।**

अर्थः–हे पार्थ! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पाप योनी वाला भी यदि मेरी शरण में आता है तो परमगति पाता है।

भावार्थः– शरणागत कोई भी श्रद्धा और प्रेम से हो, चाहे वो स्त्री, वैश्य, शूद्र या कोई पाप योनी वाला (अन्य जीवात्मा) ही हो, प्रभु के यहाँ परमगति पाता है। अतः प्रेम और शरण सबसे ऊँचे हैं।

50

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवेष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।। **9।34।**

अर्थः– मुझमें मन लगा कर मेरे भक्त बनकर मेरा पूजन, प्रणाम करके अपनी आत्मा मेरे परायण करके तू मुझे ही प्राप्त होगा।

भावार्थः– सारे उपदेशों (कि फिर क्या करें) का सार यही है कि प्रभु में मन लगाकर भक्ति पूर्वक पूजन प्रणाम करके अपनी आत्मा को उनके सहारे (परायण) कर दो तो उन्हीं को प्राप्त हो जाओगे।

51

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।। **10।10।**

अर्थः– उन निरंतर योग आदि में लगे प्रीतिपूर्वक भजने वाले को वह तत्व ज्ञान देता हूँ जिससे वे मुझे ही प्राप्त होते हैं।

भावार्थः– केवल दो बातें योगी को प्रभु प्राप्ति के लिए चाहिए। वे हैं प्रीतिपूर्वक (आंतरिक आडंबर वाली नहीं) और निरंतर भजन (एक क्षण को भी न छूटने वाला)

52

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्।। **10।12।**

अर्थः– आप परम ब्रह्म, परम धाम, परम पवित्र पुरुषों एवं देवों के भी आदिदेव (पूर्वज) अजन्मा सर्वव्यापी, सनातन हैं।

भावार्थः– ये उस परम परमेश्वर की हृदय से प्रार्थना है। उसकी परम् दिव्यता, पवित्रता और सनातन होने वाला दिग्दर्शन है।

प्रवचन गुरुदेवः डा.श्रीकृष्ण लालजी महाराज

यम–नियम का पालन आवश्यक है

(जीवन संध्या में दिया गया महत्वपूर्ण वचनोपदेश)

हमारे यहाँ अभ्यासी जब तक यम नियम का पालन नहीं करता तब तक आगे नहीं बढ़ सकता। जो यह चाहते हैं कि हमें नाम (दीक्षा) दिया जाये और सिलसिले (हमारे सत्संग) में शामिल कर लिया जाये तो उनके लिए ज़रूरी है कि पहले अपनी रहनी सहनी ठीक करें। इसके लिए पाँच यम हैं, पाँच नियम हैं–

यम :1.अहिंसा, 2.सत्य, 3.अस्तेय, 4.ब्रह्मचर्य, 5.अपरिग्रह
नियम :1.शौच, 2.सन्तोष, 3.तप, 4.स्वाध्याय, 5.ईश्वर प्राणीधान।

इन यम नियमों का पालन करते हुए बुरी बातों को छोड़ना है और अच्छाई को ग्रहण करना है।यह ज़रूरी है कि परमार्थ में शामिल होने के लिए दुनियाँ से कुछ न कुछ वैराग्य हो। जो अब तक दुनियाँ को चाहते हैं वो तरक्की नहीं कर सकते।जो कर्म कर चुके हो वो तो तकदीर में लिखे जा चुके हैं।वो तो भोगने ही पड़ेंगे। जो कुछ तकदीर में लिखा जा चुका है वह तो होकर ही रहेगा। कोई बेटा चाहता है, कोई अपने रोज़गार और नौकरी में तरक्की चाहता है, कोई अपने किरायेदार से परेशान है तो वह यह चाहता है कि किरायेदार मकान खाली कर जाये, किसी की अर्जी कहीं अगर अटकी पड़ी है तो वह चाहता है कि मेरी अर्जी वहाँ से निकल जाये इत्यादि। क्या यह परमार्थ है ? क्या परमार्थ को भी खेल समझ रखा है ?

यह ठीक है कि यदि किसी का कोई काम ऐसा अटका हुआ है जिसकी वजह से उसके परमार्थ में रुकावट पैदा हो गई है तो उसकी सहूलियत हो जाय, इसलिए हम सबके लिए दुआ कर देते हैं और चाहते हैं कि वो परमार्थ में तरक्की करे। लेकिन सिर्फ दुनियाँ के लिए ही यह सत्संग नहीं है। जिन्दगी का यह Aim (लक्ष्य) नहीं है। दुनियाँ में भी तरक्की के लिए कोशिश करो लेकिन ईश्वर का सहारा लेकर। अगर कामयाबी नहीं होती

तो निराश नहीं होना चाहिए और यह सोच लेना चाहिए कि ईश्वर ने हमारी इसी में भलाई सोची है।

संतमत उसके लिए है जो दुनियाँ से मुक्त होना चाहता है और जो यम–नियम का पालन करता है। अपने आपको इस लायक बनाओ तो इस सिलसिले में दाखिल होने के अधिकारी बनोगे।

अब हमारी ज़ईफी (वृद्धावस्था) है और हममें इतना दमख़म (पौरुष) नहीं रहा कि हम नये सत्संगियों को तालीम दे सकें। इसलिए हमने जगह–जगह पर तालीम के लिए बमदजमत (केन्द्र) बना दिये हैं। जो लोग 'नाम' (यानी गुरुमंत्र या दीक्षा) लेना चाहते हैं वे पहले अपने नज़दीक के सैन्टर (केन्द्र) पर जायें और अभ्यास करना सीखें और यम–नियम का सख़्ती से पालन करें। जब उस सैन्टर से नाम देने के लिए सिफारिश की जायेगी तब हम नाम देंगे।

हमारे पास बहुत से ख़त आते हैं जिनमें प्रेमीजन हमारी बीमारी का हाल पूछते हैं और अपनी हालत वग़ैरा लिखते हैं। हमारे पास कोई लिखने वाला नहीं है और हमारा दाहिना हाथ बीमारी की वजह से इस क़ाबिल नहीं है कि हम ख़ुद जवाब लिखकर भेजें, लेकिन फिर भी हम कोशिश करते हैं कि जो जवाबी पोस्टकार्ड आये हों उनका जवाब दे दें। बाकी ख़त पड़े रह जाते हैं। उनका जवाब नहीं पहुँच पाता।

हमने पहले भी लिखा है और रामसंदेश में छपवाया भी जा चुका है कि हमारी बीमारी के बारे में सरदार करतार सिंह, डा. हरिकृष्ण और महेश बाबू से मालूम करना चाहिए। ये लोग मेरे हर वक्त जवनबी (सम्पर्क) में रहते हैं। परमार्थ की बाबत या अभ्यास के बारे में जो कुछ पूछना हो मुझसे पूछो। मुझसे सिर्फ़ उतना काम लो जितना निहायत ज़रूरी हो।

दो तरह के आदमी होते हैं। एक जिज्ञासु और दूसरा सत्संगी। जिज्ञासु वो है जो देख रहा है कि कौन सा रास्ता अपनाऊँ। सत्संगी वह है जिसने रास्ता अपना लिया है। यह बाज़ार नहीं है कि एक दुकान देखी फिर दूसरी और सब जगह का मजा चखते रहें। सत्संग में शामिल हो जाने के बाद ऐसा करना ग़लत है। लड़की की शादी होने पर जब बहु बनकर ससुराल में जाती है तब सास कुछ दिनों उसके पास रहती है और जब बहु सयानी हो

जाती है और बाल बच्चे वाली हो जाती है तब सास पास नहीं रहती। बहु अपनी गृहस्थी में स्वतंत्र है।

हमारे सिलसिले का भी यही हाल है। गुरु और शिष्य का संबंध ऐसा ही है जैसा पति और पतिव्रता पत्नी का। सिलसिले में शामिल होने से पहले आपको पूरी आज़ादी है कि खूब घूमिये और जहाँ चाहे वहाँ के सत्संग और उसके अधिष्ठाता की जाँच कीजिए। लेकिन जब एक बार इस सिलसिले में शामिल हो जायें तब दूसरी जगह नहीं जाना चाहिए, वरना नुकसान हो जायेगा।

हमें एक वाक़ा (घटना) याद आ गया। एक मुसलमान सज्जन मेरे class fellow (सहपाठी) थे जो मौलवी अब्दुल ग़नी साहब के शिष्य थे। उनका अभ्यास बहुत ऊँचा था। कई घंटे अभ्यास किया करते थे। बाबू जगमोहन लाल (मेरे गुरु महात्मा रामचन्द्र जी के सुपुत्र) व कुछ दूसरे सज्जनों को महात्मा जी ने तालीम के लिए उन मुसलमान सज्जन के सुपुर्द किया था लेकिन उनमें एक लत (आदत) थी कि हर दुकान पर से जायज़ा (स्वाद) लेते थे यानी हर फ़कीर की सौहबत उठाना चाहते थे। उनका ख़्याल था कि एक फ़कीर हर चीज़ में specialist (विशेषज्ञ) नहीं हो सकता। अपने इस ख़्याल को उन्होंने हम पर भी ज़ाहिर (व्यक्त) किया लेकिन हम पर कोई असर नहीं हुआ।

वे जगह–जगह फ़कीरों में घूमने लगे। उन्होंने मौलवी साहब को ख़त लिखा कि मुझे यह बतलाइये कि मैं कौन से मुक़ाम (चक्र) से गुज़र रहा हूँ? हमारे यहाँ का तरीका कश्फ़ यानी खैंच का है। शिष्य की आत्मा को गुरु अपनी शक्ति से ऊपर को खैंच लेता है। जैसे किसी को दिल्ली की सैर करनी हो और उसे मोटर में बिठाकर साठ मील की रफ़्तार से दिल्ली पहुँचा दिया जाये तो उसे रास्ते की चीजों का ख़ास पता नहीं लगेगा, सिर्फ एक झलक सी दिखाई देगी। इसी तरह जब गुरु अपनी शक्ति से शिष्य की आत्मा को ऊपर चढ़ाता है तो शिष्य को बीच के स्थानों का खुल कर ज्ञान नहीं होता। बाद में जहाँ से चला था वहीं लाकर छोड़ देते हैं। इस कश्फ़ (खैंच) के कारण शिष्य को ऊपर के स्थानों का आनन्द तो थोड़ी देर के लिए प्राप्त हो जाता है और कुछ न कुछ नया अनुभव हो जाता है।

बाद में शिष्य अपने अभ्यास द्वारा मन को शुद्ध करके एक–एक चक्र को पार करके ऊपर चढ़ता जाता है और उसको रास्ते की हरेक चीज़ detailwise (ब्यौरेवार) मालूम होती जाती है। इस तरीके में पहले character formation (इख़लाक की दुरुस्ती, चरित्र निर्माण) बहुत ज़रूरी है और गुरु से प्रेम होना चाहिए। अभ्यास बाद में होता है। कश्फ़ (खेंच) के तरीक़े में शिष्य को detail (ब्योरा) का पता नहीं लगता और यह भी नहीं मालूम होता कि हम कौन से चक्र से गुज़र रहे हैं। शब्द तक का पता नहीं चलता।

मौलवी साहब ने उन साहब के पत्र का उत्तर बड़े प्रेम भरे शब्दों में दिया और समझाया कि अज़ीज यह बात मत पूछो। लेकिन उनको तसल्ली नहीं हुई और मौलवी साहब को दुबारा पत्र लिखा। मौलवी साहब कृपा करके फिर भी टाल गये। लेकिन उन सज्जन ने तीसरी बार फिर पत्र लिखा और यह भी लिख दिया कि अगर आप इजाज़त (आज्ञा) दें तो मैं किसी दूसरी जगह से मालूम कर लूँ। इस पर मौलवी साहब उनके इस बेअदबी के व्यवहार से नाराज़ हो गये और लिख दिया कि जहाँ से तुम्हारी ख़ुशी हो हासिल कर लो।

लालाजी साहब (मेरे गुरुदेव) को जब इस बात का पता चला तो वे बहुत दुःखी हुए और उन मुसलमान सज्जन से बाले कि ''तुमने बहुत बुरा किया जो एक फकीर को नाराज़ कर दिया। अब जाकर उनसे माफी मांग लो।'' उन सज्जन की अकेले जाने की हिम्मत न हुई और लालाजी साहब को साथ लेकर मौलवी साहब की सेवा में गये। मौलवी साहब लालाजी साहब को बहुत प्रेम करते थे और आमतौर से उनकी हर बात मान लिया करते थे। वे कहा करते थे कि ''भाई साहब ने (परमसंत मौलाना फज़्ल अहमद खाँ साहब, जो कि मौलवी साहब के गुरुभाई थे) इनमें (लालाजी साहब में) न मालूम क्या भर दिया है कि जिसकी थाह नहीं मिलती।''

लाला जी साहब को देखकर बोले–''मुन्शी जी आप! फरमाइये क्या बात है ?'' लालाजी साहब ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया–''इन अज़ीज (उन मुसलमान सज्जन) से बड़ी ग़लती हो गई, इनको माफ़ का दिया जाए।'' मौलवी साहब ने कहा कि'' मैं आपकी और सब बात मान लूँगा लेकिन इस बीच में आप मत पड़िये। मैं इसे माफ़ नहीं कर सकता क्योंकि इससे मेरे

सिलसिले (वंश) की बेज़्ज़ती होती है।'' लाला जी साहब ने कई बार प्रार्थना की लेकिन उन्होंने नहीं माना। अब तक उन मुसलमान सज्जन को कहीं किनारा नहीं मिला और वे भटकते फिरते हैं। न दीन के रहे न दुनियाँ के। फक़ीर को नाराज़ नहीं करना चाहिए क्योंकि वही तो तुम्हारा भला चाहता है।

जब तक पुख़्तगी न हो जाए उस वक्त तक हर जगह नहीं जाना चाहिए। मज़बूती आ जाए, तो फिर संत ख़ुद इज़ाजत (अनुमति) दे देते हैं। इसमें narrow mindedness (ओछापन) नहीं है बल्कि इसमें आपको नुकसान होने से बचाया जा सकता है। फ़कीरी में आजकल दुकानदारी चल रही है। परमार्थ को लोगों ने एक profession (व्यवसाय) बना लिया है। उधर से बचना है।

हमारे यहाँ का तरीका 'जज़बुल सलूक' (भक्ति ज्ञान अर्थात् पहले भक्ति फिर ज्ञान) का है। गुरुप्रेम के वशीभूत होकर, अपनी शक्ति से शिष्य की सुरत को ऊपर खैंच देता है। शिष्य की आत्मा गुरु की आत्मा के साथ जाती है और ऊँचे स्थान का आनन्द लेती है। मगर जब तक मन शुद्ध नहीं होता तब तक आत्मा वहाँ ठहर नहीं पाती। शिष्य उस आनन्द को नीचे गिरने के बाद भी भूलता नहीं है और उसी की खिचावट (आकर्षण) में वह आगे तरक्की करता जाता है।

गुरु की शिष्य पर ऐसी खास कृपा के लिए पहली शर्त यह है कि गुरु और शिष्य में परस्पर अगाध प्रेम हो, मन की दुई मिटकर एक हो जायें, दोनों का तम और रज ख़त्म, दोनों का सतोगुणी मन मिल जाये, तब फायदा होगा वरना गुरु कितनी भी कोशिश करें, आत्मा का अनुभव नहीं करा सकता।

गुरु की तलाश में एक जन्म भी लग जाये तो कोई हर्ज नहीं, जब गुरु धारण कर लो तो दरवाजा छोड़कर मत जाओ। तुम किसके शिष्य बनते हो ? क्या आदमी के ? नहीं, आप तो ईश्वर को गुरु धारण करते हैं। जिस शरीर में ईश्वर बसता है वह तो मिट्टी का बना हुआ है। वह तो सिर्फ मन्दिर है। मंदिर की पूजा तो नहीं करते, उसके भीतर भगवान की जो मूर्ति है, पूजा उसकी करी जाती है। शायर ने फ़ारसी में लिखा है–

''जमाले हमनशीं दरगन असरकर्द।
वरगना माद्दआ फाकम के हस्तम्।।''

''अर्थात् मेरे प्यारे महबूब के जमाल (ईश्वरीय सौन्दर्य) ने मेरे अन्दर असर किया है, प्रभाव डाला है, अन्यथा मैं तो वही मिट्टी का पुतला जो पहले था वह अब भी हूँ। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करें।

सूचना आगामी सत्संग एवं भण्डारों के संबंध में

मई सत्संग मुज़फरपुर में

मई 2017 का सत्संग मुज़फरपुर में 16, 17 और 18 मई को होगा।

सत्संग स्थलः

संस्कार श्री भवन, संजय सिनेमा रोड, ब्रहमपुरा थाना चौक, मुज़फरपुर

सम्पर्क करें:

डॉ. मुद्रिका प्रसाद 09470825825, 07250929200
उमाशंकर प्रसाद सिंह 09807240346
सतिन्दर प्रसाद 09431281282

जून भण्डाराः चकिया में

11,12, और 13 जून को, तीन दिन का भण्डारा चकिया में आयोजित किया जायेगा।

सत्संग स्थलः

शगुन लान, मोहम्दाबाद (बड़ी नहर पुल के पास) चकिया

सम्पर्क करें:

श्री रामवृक्ष सिंह 09430839261
श्री राम वृत सिंह 09455111331
श्री गोपाल प्रसाद 09453331706
श्री भोला सिंह 09935145018

परमसंत डा.श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के अनमोल वचन

साधन

किसी चीज़ को अच्छा समझकर ग्रहण करना 'अनुराग' और किसी चीज़ को बुरा समझकर उसे छोड़ना 'वैराग्य' है। जो वस्तु ईश्वर की तरफ़ को ले जाती है, उसे पकड़ो, वही अनुराग है। और जो वस्तु ईश्वर से छुड़ाती है, उसे छोड़ते चलो, यही वैराग्य है।

❖❖❖❖❖

यह मन ही है जो हमारी आस्तीन का साँप बना बैठा है। दोस्त बन कर वही हमको खा रहा है। यह कहता रहता है कि दुनिया में अपना धर्म पूरा करो। ऊँचा ले जाकर मारता है। लेकिन याद रखो कि मुख्य धर्म है अपनी आत्मा का साक्षात्कार करना है। बाक़ी सब धर्म secondary (गौण) हैं। जीवन का लक्ष्य यही है।

❖❖❖❖❖

जो ऊँचे अभ्यासी हैं, उन्हें मन दूसरी तरह मारता है। अगर भाइयों की सेवा का काम सुपुर्द कर दिया गया तो समझने लगे ''मैं गुरु हूँ'', पैर पुज रहे हैं, मन आनन्द ले रहा है। यह क्या किया तुमने अहंकार में फँस गये! अधम योनियों में गये। जिसने अपने को गुरु समझा वह तो गया। गुरु तो केवल एक है– परमेश्वर! वही असली गुरु है।

❖❖❖❖❖

अगर मन किसी डर से जिद्द (हठ) छोड़ देता है। (चाहे वह लालच के कारण, चाहे किसी वस्तु के न मिलने से) तो वह छोड़ना नहीं है। असल छोड़ना वह है कि वह चीज़ मौजूद है और ताकत इस्तेमाल भी है और कोई डर भी नहीं है लेकिन अब उस चीज़ को तबियत नहीं चाहती।

❖❖❖❖❖

तकलीफ़ें बहतरी (कल्याण) के लिए आती हैं। ईश्वर को जिसका उद्धार मंजूर होता है उस पर शुरु–शुरु में तक़लीफें आती हैं। इनसे आत्मा

का मैल धुलता है। तकलीफ़ों से पुराने संस्कारों का कफ़्फारा यानी बदल हो जाता है।

❖❖❖❖❖

मोक्ष कभी पिछले संस्कारों से नहीं मिलती। वह तप करने से ही प्राप्त होती है। लिहाज़ा उसके लिए तप की बड़ी ज़रूरत होती है। अपने मन की चाल पर ख़्याल रखना उसको बराबर सँवारते रहना 'तप' है। तम से रज, रज से सत्, सत् से आत्मा में मिला देना (यानी ईश्वर की याद में मिला देना) यही असली तप है। मोक्ष को हासिल (प्राप्त) करने के लिए कोई मियाद (अवधि) नहीं है।

❖❖❖❖❖

परमात्मा के प्रेम को बढ़ाना चाहिए। इसकी दो तरकीबें हैं–एक तो इस तरह की किताबें पढ़ना जो इस से ताल्लुक़ रखती हैं और उस पर अमल करते चलना। दूसरी तम और रज से निकल कर सत् पर आ जाना (Character formation) यानी अपने इख़लाक को सुधारना, और संतों की सौहबत करना।

❖❖❖❖❖

जब मनुष्य दुनियाँ की चीजों को आहिस्ता–आहिस्ता भोग कर यह जान लेता है कि इनमें असली सुख नहीं है, यह दुनिया रहने की जगह नहीं है, तब वह तम से हट सत् की तरफ़ मुड़ता है। तुम भी सत् पर आ जाओ। उस मालिक पर विश्वास करो, उसकी शक्ति के साथ एवं इस प्रकृति माता के साथ सहयोग करो। घर के लोगों को–जिनके खिलाने, पिलाने, पढ़ाने और दुनियावी फ़रायज़ पूरा करने का काम तुम्हें सौंपा गया है, उसे उसकी सेवा समझ कर करो। हुकूमत तो सिर्फ मालिक की होती है और मालिक सिर्फ़ एक ही है– वह है परमात्मा। तुम्हें तो यहाँ सेवा के लिए भेजा है, तुम अपने को मालिक कैसे समझते हो ? अपने घर वालों की ख़्वाहिशात की मातहती में मत पड़ो, मगर उन्हें गुनाह करने से रोको। कोई तुम्हारे काम नहीं आयेगा, कोई तुम्हारे मतलब का नहीं हो सकता।

❖❖❖❖❖

प्रवचन परमसंत डॉ.करतार सिंहजी साहब

सदाचार से पात्रता, पात्रता से प्रेम और प्रेम से प्रभु की प्राप्ति संभव है

महात्मा बुद्ध ने साढ़े छह वर्ष तपस्या करके एक पद्धति निकाली। वे चाहते थे कि संसार में कोई व्यक्ति दुःख में न रहे। वे आंतरिक गहराइयों में तर्मेमंतबी (खोज) करते रहे– सोचते रहे, मनन करते रहे। उन्होंने किसी देवी–देवता की या परमात्मा की पूजा भीतर में नहीं की, क्योंकि सत्य यानी परमात्मा तो प्रत्येक व्यक्ति के अंतर में है। उन्होंने साढ़े छह वर्ष प्रयास किया और इसके बाद उन्होंने एक नया साधन या रास्ता अपने उन्हीं मित्रों को बताया जो यह कहते हुए बुद्ध को छोड़कर चले गये थे कि ''ये व्यक्ति ख़ामख़्वाह हमारा समय खराब कर रहा है। ये हमारा भाई या गुरु नहीं है।'' जब उनको इस पद्धति का ज्ञान हुआ तो वे उनके पास गये हैं और सबसे पहले उनको ही यह पद्धति बतलाई है।

उन्होंने अपने मित्रों के पास देखा कि केवल पद्धति बताने से संसार को लाभ नहीं पहुँचेगा। बिना नींव या सही साधन के मकान पक्का नहीं होता है। जितनी नींव पक्की होगी, मकान उतना पक्का होगा। तेरह साल आपने प्रतीक्षा की। परन्तु जैसा परिणाम चाहते थे वैसे निकले नहीं। जैसे हमारे यहाँ यम–नियम आवश्यक है, उसी प्रकार आपने 'पंचशील' नाम के पाँच साधन लोगों को बताये। और कहा कि जब तक व्यक्ति पंचशील में (दूसरे शब्दों में यम–नियम पालन में) परिपक्व नहीं हो जाता है उसको विशेष पद्धति, जिसका उन्होंने अन्वेषण या विशेष ज्ञान प्राप्त किया था नहीं बतानी चाहिए, गुप्त रखनी चाहिए। हांलांकि वह साधन बहुत सरल है, तब भी महात्मा बुद्ध ने कहा कि सरल साधना को भी जन साधारण को तुरन्त नहीं बता देना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति सर्वप्रथम तो पंचशील को अपना कर

अपने शरीर, मन तथा बुद्धि को पवित्र और स्थिर करके सुपात्र बने और जब मन एकाग्र हो जाये तो ऐसे व्यक्ति को ही उस पवित्र साधना–प्रणाली को बताना चाहिए।

ऐसा ही अनुभव पूज्य गुरु महाराज के जीवन में हुआ। आपने पुस्तक 'अमृतरस' पढ़ी होगी। उसके अंतिम भाग में पूज्य लालाजी महाराज की तालीम (शिक्षा) वर्णित की गई है। हमारे यहाँ की शिक्षा प्रेम की है। पूज्य लालाजी महाराज के चरणों में काफ़ी जीवन व्यतीत किया। शुरु में वे बहन भाइयों को सैर के लिए ले जाते थे। कभी–कभी सिनेमा भी दिखलाते थे। पारिवारिक सुख के लिए सब बातों की आज्ञा देते थे।

गुरु महाराज किसी प्रकार का अनुशासन नहीं बतलाते थे। भाइयों के साथ उसी प्रकार प्रेम करते थे जैसे माता पिता बच्चों के साथ लाड़ प्यार करते हैं। उधर पुराने लोग भी उनको गुरु नहीं समझते थे। किसी न किसी रिश्ते नाते से उनसे व्यवहार करते थे। जैसे कोई मित्र या सम्बंधी होता है, वैसा उनके साथ व्यवहार करते थे। पूज्य गुरु महाराज और सेवक एक ही थाली में खाना खाते रहे हैं या एक ही खाट पर बैठे हैं। यानी किसी प्रकार का अंतर नहीं करने देते थे। वास्तव में संतमत या सूफी मत की सुन्दरता यही कोई है कि यहाँ प्रेम ही प्रेम है। कोई विशेष साधना नहीं कराई जाती है।

परन्तु बाद के दिनों में गुरु महाराज को जब शरीर को त्यागना था तब कुछ समय पूर्व आपको बड़ा दुःख हुआ और एक दिन आपने फ़रमाया ''जैसा मैं भाइयों से आशा करता था, वैसा मैं उन्हें न बना सका।'' हम में से एक भी उनकी आशायों के अनुसार नहीं हुआ। उन्होंने आदेश दिया (ये उन्हीं के शब्द हैं) कि ''सरदार जी, यम और नियम का सख़्ती से पालन कराना। चाहे सत्संग में संख्या कम रह जाये। मगर कोई शख़्स गुरु के नाम को बदनाम करने वाला न हो।''

इसी आदेश के नाते हम सबको यम और नियम का पालन सख़्ती से करना चाहिए था। परन्तु सेवक ने भी भाइयों से कभी विशेष अनुरोध नहीं किया है, क्योंकि यही डर रहा कि कोई मानने वाला है नहीं। परन्तु गुरु

महाराज का प्रवचन बार–बार पढ़ता रहता हूँ। और सबसे दुःख की बात यह है कि मैं स्वयं भी यम और नियम की साधना को अच्छे से नहीं कर पाया। न तो अपने शरीर को अनुशासन में ला पाया हूँ न अपने मन–बुद्धि को। तो मैं आप लोगों से क्या कहूँ? परन्तु यह गुरु महाराज का आदेश था। कोशिश करता हूँ कि कभी–कभी उनका प्रवचन आपको पढ़कर सुना दूँ ताकि आप खुद भी समझें और इनको पालन करने की कोशिश करें।

सच्चा प्रेमी कोई लाखों करोड़ों में से एक व्यक्ति होता है– कोई एक! उसको व्यापार की भाषा समझ में नहीं आती। गुरु गोविन्द सिंह जी को बड़ा शौक था कि उनके सेवक खूब पढ़ें। उन्होंने कुछ सेवकों को बनारस भेजा, वेद शास्त्र आदि पढ़ने के लिए। काफ़ी समय तक वो लोग वहाँ रहे और जब वहाँ से ज्ञान की उपाधि– 'पंडित' प्राप्त करके वापस आये तो वे पंडित ही कहलाते थे। आज तक जो भी ऐसे (सिख) पंडित हैं उनकी अलग ही एक शाखा का सिलसिला अभी चल रहा है। यह लोग निर्मले संत कहलाते हैं। वे सब वेद शास्त्रों में खूब पारंगत होते हैं।

गुरु गोविन्द सिंह जी को शौक तो था ही शिष्यों को खूब पढ़ाने का परन्तु उनका प्रेमी एक व्यक्ति बिल्कुल भी नहीं पढ़ा हुआ था– एक अक्षर भी नहीं। उन्होंने एक गुरुमुख पंडित के पास उस व्यक्ति को भेजा है और कहा कि इसको पढ़ाओ। गुरुवाणी में एक पंक्ति बहुत सुन्दर आई है–

''आनन्द भया मेरी माये, सत्गुरु मैं पाया।''

विद्वान शिष्य ने उस व्यक्ति को कहा कि पहले तुम इसी को ज़बानी याद करो, तब इसके आगे मैं और बताता रहूँगा। ये पंक्ति सुनते ही वो तो मस्ती में कूदने लगा कि मुझे और क्या पढ़ना है– बस यही दोहराता रहा ''आनन्द भया मेरी माये, सत्गुरु मैं पाया।'' जब–जब उसको आगे कुछ और बताना चाहा तो वह मना करके यही कहता कि ''इसके आगे मुझे और क्या पढ़ना है? भला इससे भी ऊँची विद्या कोई और है?''

हारकर गुरुमुख गुरु महाराज के सामने गया। और उसने बताया कि वो व्यक्ति पढ़ता ही नहीं है। उसे बुलाया गया और उससे पूछा कि आप क्यों

नहीं पढ़ते हैं, तो उसने केवल यही कहा कि ''आनन्द भया मेरी माये, सत्गुरु मैं पाया''। महाराज मैंने तो आपको रोम–रोम में बसा लिया है। मैं और क्या पढ़ूँ? मेरे भीतर में तो और जगह ही नहीं है कि दूसरी कोई और विद्या पढ़ सकूँ। ऐसी प्रबल भक्ति भावना रखने वाले व्यक्ति तो बिरले ही होते हैं। उनको यम और नियम पढ़ाना या व्याकरण पढ़ाना या ज्ञान साधना बताना ये सब बातें उनके लिए बेकार हैं, उनको अच्छी नहीं लगती हैं।

व्यवहारिक रूप में देखा गया है कि हमारे यहाँ प्रेम की जो साधना है उसको प्रत्येक व्यक्ति पूरी तरह से समझ या सही अर्थों में ग्रहण नहीं कर पाया है, यही कारण है कि अधिकांश लोग यही शिकायत करते हैं कि मन लगता नहीं है, विचार कम नहीं होते। हम किसी की मन की भावना को ठेस न पहुँचे इसीलिए साफ़–साफ़ कुछ नहीं कहते हैं। यही कोशिश की जाती है कि किसी भाई का मन न दुखाया जाये। उसके दोषों को उसको बताया न जाये। इसीलिए सीधे तरीके से बात नहीं करते। किसी एक को समझा दिया तो उसके माध्यम द्वारा सभी औरों को समझ लेना चाहिए।

वास्तव में दोष मेरा और आपका सबका है। हमारे सत्संग में अनुशासन की कमी है– अपने शरीर पर भी, मन पर भी। कभी–कभी बात होती है कि हमारे गुरुजनों ने भी तो यही साधना बतलाई थी कि प्रेमी को कुछ साधना करने की जरूरत नहीं है बस वो तो अपने इष्टदेव के पास बैठकर उनको देखता रहे, चरणों पर दृष्टि जमाये यही सोचता रहे कि कैसे खाते हैं, कैसे पीते हैं, कैसे बोलते या व्यवहार करते हैं। या फिर दूसरी तरह शिष्य गुरु का प्रेम इतना व्याकुल करने वाला हो जाये जैसे किसी पत्नी–पति का प्रेम हो जाता है। तभी और कोई पात्रता आवश्यक नहीं रह जाती और केवल प्रेम ऐसे अनुपम प्रेम से ही नैया पार हो सकती है।

पंजाब में एक बहुत उच्च कोटि के फ़कीर हुए हैं– बुल्लेशाह। उनके गुरु जो सूफ़ी संप्रदाय के नौंवे गुरु थे, उनको कव्वाली सुनने का बहुत शौक था। एक बार किसी कारण नाराज़ हो जाते हैं और बुल्लेशाह को डाँटकर अपने घर से निकाल दिया कि ''मैं तुम्हारा मुँह नहीं देखना चाहता।'' बुल्लेशाह बड़े ही

पक्के भक्त थे– अनन्य प्रेमी थे। बड़े घबराये कि अब क्या किया जाये। गुरु का रूठना शिष्य के लिए मृत्यु समान है। बुल्लेशाह ने कव्वाली सुनाने के बहाने वैश्या का रूप धारण किया और वैसे कपड़े पहनकर उनके दरबार में हाज़िर हुए और कव्वालियाँ गाने लगे। उनका गला बहुत सुरीला था। जब उनकी मस्ती भरी कव्वाली सुनी तो उनके गुरु महाराज कहने लगे कि ''ऐसा सुरीला गाना कोई नहीं गा सकता है। ये तो बुल्लेशाह ही होगा, ये कोई वैश्या या स्त्री नहीं है। ज़रा देखो तो ये कौन है ?'' इस पर उसके मुँह से कपड़ा हटाया गया तो भेद खुल गया और गुरु ने प्रसन्न होकर उसे गले लगा लिया।

गुरु कभी रूठता नहीं है यह तो उनकी एक अदा होती है, एक 'नखरा' होता है। बुल्लेशाह को आलिंगन क्या किया है सब कुछ ही उसे दे दिया। उसे तो पहले ही अपनाया हुआ था। संतों का, सूफियों का रास्ता उत्कृष्ट प्रेम का है। कैसे होता है ऐसा प्रेम ? ये सिखलाया नहीं जा सकता। अंग्रेजी में जो कहते हैं कि ''Every thing is fair in love and war'' (युद्ध में और प्रेम में सब बातें जायज़ हैं) – ये ऐसे ही प्रसंगों से सिद्ध होता है।

पूज्य गुरु महाराज कहा करते थे कि ये सब प्रेम की बातें हैं। कभी वह भी कह दिया करते थे (फ़कीरों वाली भाषा में) कि ''यदि गुरु नहीं देता तो उसके सीने पर चढ़कर बैठ जाओ – वो कैसे नहीं देगा ?'' परन्तु ऐसी उद्दण्ड हरकत प्रत्येक व्यक्ति नहीं कर सकता। ऐसी किया तो विशेष अधिकारी कोई 'मुराद' शिष्य ही कर सकता है। इसी व्यवहार पर गुरु वाणी में भी आता है कि 'सन्धयाँ, खिलंदंयां पर बंन्दंयां होवे मुकत' यानी साधारण जीवन के काम करते हुए गुरु शिष्य का काम अपने आप हो जाता है। शिष्य सब कुछ गुरु से ग्रहण कर लेते हैं, और गुरु जो प्रसादी देना चाहते हैं, इसी साधारण व्यवहार में खाते पीते में ही दे देते हैं।

यह ब्रह्मविद्या का दान गुरु द्वारा अनायास ही हो जाता है, कोई करता नहीं है क्योंकि यह विद्या मन की नहीं आत्मा की है। गुरु चाहे भी मन से तो कर नहीं पायेगा। आत्मिक विद्या मन के द्वारा नहीं होती है। ये तो कोई ऐसा प्रेम का दुर्लभ क्षण आता है जब शिष्य अपने आपको खो देता है और

गुरु भी अपने आपे में नहीं रहते हैं – दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। ये आत्मिक लीला वर्णन नहीं की जा सकती। उसका कोई साधन, कोई नियम, कोई तरीका नहीं बताया जा सकता। वो कौन सा क्षण, पवित्र क्षण होगा, जब चातक को स्वाति बूँद मिलेगी– सो कोई नहीं कह सकता।

महादानी गुरु और सुपात्र शिष्य जो ऐसी अनुपम प्रेम लीला करते हैं, वे भले ही अपने अति आनन्द विभोर और मदहोशी जैसे आलम में व्यवहार से पहचान लिए जायें पर उस दशा का शब्दों में वर्णन करना अति कठिन है। पति के प्रति स्त्री का ऐसा प्रबल प्रेम कुछ बहनों में देखने में आता है जो कुछ–कुछ उसका प्रतीक है।

किसी–किसी प्रेमी साधक पर तो हर समय उसी अनुभूति का आनन्द छाया रहता है। उस वक्त उसकी आँखों से अश्रुओं की धार निकलने लगती है, वो चाहता है कि जाकर अपने प्यारे गुरु से लिपट जाये। वो चाहता है मैं तन–मन–धन सब कुर्बान कर दूँ। वो चाहता है कि मैं स्वयं बिल्कुल खत्म हो जाऊँ, रोम–रोम में मेरा इष्टदेव समा जावे। उस समय उसको अपने आप पर भी कोई नियंत्रण नहीं होता। ऐसे क्षण प्रत्येक भाग्यशाली व्यक्ति के अनुभव में कभी न कभी आते तो हैं परन्तु स्थिर या निरंतर नहीं रह पाते।

उधर ऐसा प्रेम न हो तो दूसरी तरह से पात्र या अधिकारी बनने के लिए अनुशासित होना भी ज़रूरी है। अपनी साधना को सफल करने की जो नींव है, उसको पुख़्ता बनायें। इसका अर्थ ये नहीं है कि हम प्रेम को बिल्कुल ही छोड़ दें। नहीं, प्रेम सहजता से उत्पन्न होना चाहिए, कोशिश से नहीं होता है। प्रेम तो अग्नि की तरह है। स्वामी रामदासजी इसका उदाहरण देते हैं कि अगरबत्ती की तरह सुगंध देते हुए व्यक्ति को आप स्वयं जल जाना चाहिए। ये कोशिश से नहीं होता है। कुछ समय गुरु के चरणों में रहकर या कभी–कभी पिछले संस्कारों से ऐसा गहरा प्रेम उत्पन्न हो जाता है।

ऐसा उत्कट प्रेम न पाकर पूज्य गुरु महाराज ने विवश होकर आदेश दिया था कि हमको – नये पुराने सब अभ्यासियों को – यम और नियम का पालन अवश्य करना चाहिए। मैंने आज पुराने भाइयों को इसलिए कह दिया है कि उन्होंने हमें ही बिठाकर, हमें ही सम्बोधित करके यह शब्द कहे थे।

जिस समय उन्होंने आदेश दिया था कि सख़्ती से यम और नियम का पालन कराया जाए, सेवक तो हाजिर था ही, कई सारे व्यक्ति और भी थे। मैं स्वयं ऐसा नहीं कर पाया हूँ, मैं क्षमा याचना करता हूँ। मैं भी कोशिश करूँगा और आप भी करिये कि यम और नियम के पालन में हम उत्तीर्ण हों।

हम सब अयोग्य निकले। एक भी उनका योग्य पात्र नहीं, उन्होंने किसी ख़ास व्यक्ति से नहीं कहा कि यह मेरा विशेष प्रिय है– सबको ही कहा था। तभी से उन्होंने इस यम और नियम की जरूरत पर जोर देना शुरु किया। और संभवतः यह पहला प्रवचन इस विषय पर उन्होंने दिया है। जो ये चाहते हैं कि उन्हें हमारे सत्संग में शामिल कर लिया जाये या दीक्षा दी जाये तो उनके लिए यह ज़रूरी है कि यम–नियम के अनुसार सुपात्र बनने के लिए पहले अपनी रहनी–सहनी ठीक करें।

यम और नियम को अच्छी तरह समझ लीजिये। मैं ज्यादा विस्तार से नहीं कहूँगा, संक्षेप में कहूँगा ताकि प्रत्येक व्यक्ति इनको समझ ले और पालन करे। कोई बड़ी कठिनाई नहीं है। परन्तु बात यह है कि हम इधर गंभीरतापूर्वक ध्यान नहीं देते हैं। हमारे पुराने भाई भी इस तरफ़ ध्यान कम देते हैं। अभ्यासी जब तक यम–नियम का पालन नहीं करता तब तक आगे उचित रूप से नहीं बढ़ेगा।

पिछले कुछ समय से ऐसा हुआ है कि सत्संग में लोग बाग आते जाते हैं और संख्या भी बढ़ती जाती है। हमारे शिक्षक वर्ग में भी भाई चाहते हैं कि संख्या बढ़े। वास्तव में हमारे यहाँ संख्या बढ़ाने पर बल नहीं देते। संख्या कम हो फिर भी प्रत्येक व्यक्ति मोती की तरह चमकता हुआ हो, हीरा हो। इसीलिए गुरु महाराज कहते थे कि दीक्षा लेने से पहले अपने आपको पात्र बनाओ, योग्य सुपात्र बनो। अपनी रहनी–सहनी अर्थात् अपने शरीर पर, मन पर, बुद्धि पर ध्यान दो और सबको शास्त्र के अनुसार चलाओ। महापुरुषों के जीवन के अनुसार बनाने का प्रयास करो। जब इसमें कुछ प्रगति हो जाये और दूसरी ओर यह देख लेने के पश्चात् कि गुरु भी योग्य गुरु है तब दीक्षा लेनी चाहिए। जल्दी नहीं करनी चाहिए।

दीक्षा लेने का मतलब ये है कि आत्म साक्षात्कार करने के लिए या अपने आपको जानने के लिए समर्थ गुरु से या शास्त्रों में बताये सिद्धांतों से मार्गदर्शन लेना चाहिए। दीक्षा में दीक्षा लेने वाला शिष्य अपना सर्वस्य गुरु को अर्पण करता है। शाब्दिक रूप में तो हम कह देते हैं कि तन–मन–धन सब आपको (गुरु को) अर्पण करता हूँ परन्तु यह अर्पण होता नहीं है। गुरु भी बता देता है कि किस प्रकार साधन शुरु करना चाहिए। परन्तु ये वास्तविक दीक्षा नहीं है ये तो रास्ता बनाने का श्रीगणेश है।

दीक्षा में तो साधक अपना सब कुछ न्योछावर कर देता है। भीतर से ख़ाली हो जाता है और गुरु के पास जो कुछ है वो उस पात्र में डाल देता है। वो पात्र उस 'देन' को कितना सम्भाल सकता है वो उस व्यक्ति की क्षमता और श्रम पर निर्भर है। गुरु तो यही प्रयास और कृपा करता है कि उसके पास जो कुछ भी है उसे शिष्य को दे दे। इसीलिए उस आत्मिक कृपा को संतमत में गुरु–प्रसादी कहते हैं। प्रसाद यानी उसकी कृपा, प्रसन्नता, शान्ति, उल्लास, आनन्द यानी सब कुछ जो आत्मा के गुण हैं वो ख़ाली बर्तन में डाल देता है। और इस अमूल्य आध्यात्मिक निधि को अपने बर्तन में संभाल कर रखने का नाम अभ्यास है।

इस प्रकिया के विषय में भाइयों को ज़रा और विचार करना चाहिए। स्नेह में आकर हम दीक्षा तो दे देते हैं। परन्तु ऐसा करना नहीं चाहिए। शिक्षक वर्ग से मेरा आग्रह है कि ऐसे इच्छुक व्यक्तियों को पहले स्वयं साल दो साल वे संभालें। वे जानते ही हैं कि हमारे यहाँ का तरीका भी यही है। पूज्य गुरु महाराज भी जो नये भाई आते थे, उनको माननीय डाक्टर श्यामलाल जी के पास या आदरणीय मुख़्तार साहब के पास भेज देते थे कि जाओ उनके पास बैठो। जल्दी नहीं करते थे।

मैं भी यह अनुरोध करूँगा कि जब नये भाई आयें और वे सत्संग में सम्मिलित होने के लिए अपनी इच्छा प्रकट करें, तो इनको साल दो साल आप संभालें। और जब वो पात्र बन जायें और आपको स्वयं ये विश्वास हो जाये कि इनको दीक्षा मिलनी चाहिए, तब उनको पेश करें। जब समझ लें हाँ इसमें sensitivity (जज़्ब करने की शक्ति) आ गई है और उनका

आचरण शुद्ध है तब उस व्यक्ति को पेश करना चाहिए। मेरी इच्छा यही है कि जो गुरु महाराज का आदेश था उसका ही पालन हो अर्थात् जब तक व्यक्ति पात्र न बन जाये उसको दीक्षा नहीं दिलवानी चाहिए।

इस संबंध में एक घटना याद आ रही है। एक बार पूज्य गुरु महाराज अपने एक मित्र को पूज्य दादा गुरु महाराज की सेवा में ले गये। सत्संग जल्दी ही खत्म करा दिया गया और दादा गुरुदेव ने कहा कि ''आज क्या बात है कि सत्संग में वो बात नहीं है जो होनी चाहिये'' गुरु महाराज से पूछा कि कौन नया व्यक्ति आया है ? पूज्य गुरु महाराज ने उस व्यक्ति को पेश किया। आपने सत्संग बंद करा ही दिया था और उस व्यक्ति को भी अपने घर वापस भेज दिया। गुरु महाराज को कहा कि ''जो शख़्स (व्यक्ति) आप यहाँ सत्संग कराने के लिये साथ लाये हैं वो ठीक नहीं है। उसी के बैठने से हमारे पवित्र सत्संग में भी शुद्ध वातावरण नहीं रहा। उसे फिर कभी न लाना।''

हमारा जो सत्संग है उसका अपना एक उच्च स्तर का आदरणीय स्थान है। शुरु-शुरु में सत्संग में वही लोग बैठा करते थे जो दीक्षित होते थे। और अब तो सब लोग ही बैठ जाते हैं।

अंत में पुनः निवेदन करूँगा कि हम सब गंभीरता से स्वनिरीक्षण करें। अपनी कमज़ोरियों को देखें और यम नियम का पालन करते हुए इन कमज़ोरियों से बचें। और धीरे-धीरे एक-एक करके इनको दूर करते जायें। निर्मल आचरण करते हुए सच्चे अधिकारी बनें। सदाचरण द्वारा सुपात्र बनते ही गुरु प्रेम की प्राप्ति होगी और आत्मिक प्रेम की डोर तो परमपिता परमेश्वर से ही जुड़ी रहती है। अतः पहले चरित्र निर्माण हो जाये तो प्रगति बहुत सहज होगी।

उधर दूसरी ओर बुल्लेशाह या गुरु गोविन्द सिंह जी के अनपढ़ शिष्य जैसा गुरु से प्रबल प्रेम हो तो भी निश्चित रूप से कल्याण हो जायेगा। रास्ते दोनों ठीक हैं।

गुरुदेव आपको शक्ति दें।

सत्संगियों को अनिवार्य निर्देश

(ग़ाज़ियाबाद, दिनांक 20–04–2004)

परम पूज्य गुरुदेव डा. करतार सिंह जी साहब द्वारा सत्संग को सुचारु रूप से चलाने के लिए और सत्संग की गरिमा और अनुशासन को ध्यान में रखते हुए हम सब भाईयों को कुछ आवश्यक निर्देश दिए गये थे। जिन्हें वर्ष 2004 के मार्च–अप्रैल के राम सन्देश में छापा गया था। इसके साथ ही पिछले वर्ष वार्षिक भंडारे के अवसर पर कुछ एक महत्वर्पूण निर्णय लिए गये हैं, जिनको सभी की जानकारी हेतु प्रकाशित किया जा रहा है। मेरी आप सबसे करबद्ध प्रार्थना है कि गुरुदेव के निर्देशों को हम सब ध्यानपूर्वक एक बार दुबारा पढ़ें, और जो निर्णय वार्षिक भंडारे पर लिए गये हैं उन सबका पालन करें। *–डा. शक्ति कुमार सक्सेना*

1. कोई भी सत्संगी अपने निजी व्यवसाय में आवास या निजी कार्य में, मकान, दुकान में सत्संग का नाम या उनका फ़ोटो उपयोग नहीं करेंगे, यदि बहुत आवश्यक हो तो अनुमति हेतु पूर्ण विवरण सहित प्रस्ताव भेजें।
2. कोई भी किताब, किसी प्रकार के प्रकाशन या पाम्फलेट आदि या किसी किताब की प्रस्तावना या किसी पुस्तक आदि का समर्पण सत्संग के अध्यक्ष/आचार्य के चरणों में, अपने क्षेत्र, शहर में या बाहर कहीं भी नहीं निकालेंगे।
3. कोई भी सत्संग सम्बंधी कार्य बिना अध्यक्ष की अनुमति के बग़ैर नहीं करेंगे।
4. हर सेन्टर में जो आचार्य, शिक्षक, मॉनिटर नियुक्त किये हैं वह एक अनुशासन बनाये रखने के लिए हैं जैसा कि किसी कक्षा में अध्यापक किसी विद्यार्थी को कक्षा में अनुशासन के लिए मॉनिटर बना देते हैं। हमारे यहाँ सत्संग में सब सामूहिक रूप से बैठते हैं। उस समय उसमें बैठे आचार्य, शिक्षक, मॉनिटर का आवाहन नहीं करते। आवाहन आदि पुरुष, गुरु या अपने इष्ट का जिसको आपने, अपने आपको सौंपा है, समर्पण किया है, उसको करते हैं। उसकी

कृपा को निहारते हैं, जो उस सत्संग में धारा प्रवाह आ रही है। प्रसाद भी जो रखा जाता है वह उस समय उपस्थित आचार्य, शिक्षक, मॉनिटर के आगे नहीं रखा जाता, वह बीच में रखकर इष्ट को अर्पण किया जाता है। आचार्य, शिक्षक या मॉनिटर यह समझे कि प्रसाद उसके आगे रखा जाए तो यह ग़लत है। सत्संग में कोई ऊँचा, नीचा, छोटा या बड़ा नहीं है। हम सब उस आदि पुरुष गुरुदेव की संतान हैं। प्रसाद उनके चरणों में अर्पण करें। भंडारों में भी आपने देखा होगा कि प्रसाद उस आदि शक्ति गुरुदेव एवम् पूर्वजों को भेंट किया जाता है, इसलिये कहते हैं कि आईये प्रसाद अर्पण करें।

5. एक भ्रम और भी हमारे शिक्षक वर्ग के भाईयों में फैला हुआ है कि जिस सैन्टर पर शिक्षक, मॉनिटर सत्संग का संचालन करते हैं वहाँ शिक्षक या संचालक किताब (जैसे राम सन्देश, संत वचन, संत प्रसादी) से प्रवचन पढ़कर नहीं सुना सकते। यह भ्रम ग़लत है। दोनों ही शिक्षक, मॉनिटर किताब से पढ़कर सुना सकते हैं, व्याख्या नहीं करना चाहिए।
6. जिस सैन्टर पर पूर्व से कई वर्षों से नियुक्त मॉनिटर सत्संग कराते आ रहे हैं और अब वहाँ शिक्षक भी नियुक्त कर दिया गया है तो सत्संग का संचालन जो मॉनिटर आचार्य की अनुपस्थिति में पूर्व से कराते आ रहे हैं, वह यथावत जो शिक्षक नियुक्त किया है उसके सहयोग से दोनों मिलकर करेंगे। दोनों में कोई छोटा बड़ा नहीं समझा जायेगा। यह कोई व्यक्तिगत या शासकीय कार्य नहीं है। सत्संग का कार्य है। स्थिति को देखते हुए सहयोग के लिए एक और भाई को रखा गया है। किसी सत्संगी को इस विवाद में नहीं पड़ना चाहिए। हमारा मत प्रेम का मार्ग है, प्रेम दें, प्रेम लें, परमार्थ लाभ करें। ''गुरु कृपा'' व प्रेम प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।
7. ऐसा देखने में आता है कि भाई लोग नये भाई बहनों को या उन पुराने भाईयों–बहनों को यह कहकर लाते हैं कि वहाँ चलो उनसे नाम ले लो, सत्संग में जाने से तुम्हारे सब काम पूरे हो जायेंगे। यह ग़लत है। आने पर अग़र उनके काम नहीं बनते तो उन्हें निराशा होती है और वे अश्विासी हो जाते हैं। सत्संग से हतोत्साही हो जाते हैं। फुसलाकर नहीं लाना चाहिए। हाँ यह सही है कि सत्संग में आने से, नाम लेने से, गुरु की शरण ग्रहण करने पर, उन पर आश्रित होने पर गुरुदेव साधक की पूर्ण संभाल करते हैं।

जिस तरह प्रभु अपने आश्रितों को सुखी देखना चाहते हैं, वैसे ही गुरुजन भी साधक को सुखी देखना चाहते हैं। इस तरह जब परमार्थ के रास्ते पर अपनी आत्मा की उन्नति के लिए चलते हैं तो गुरुजन उसके लिए तो दुआ करते ही हैं, साथ ही दुनियावी कामों में (दुख तकलीफ) से उबारने के लिए उसमें सहूलियत हो जावे, दुख भोगने की शक्ति आ जावे आदि के लिए भी दुआ कर देते हैं, परन्तु मिलता उतना ही है जितना भाग्य में लिखाकर आये हैं। कर्मभोग को तो हर एक को भोगना ही पड़ता है।

8. पूज्य लालाजी महाराज एवं गुरुदेव ने भी निरन्तर अपने प्रवचनों में हमें शिक्षा दी है कि भोग (दुख तकलीफ) तो हमारे पुराने संस्कारों की वजह से हर प्राणी को उसके कर्मानुसार भोगने पड़ेंगे, हाँ अध्यात्म की प्रगति में कहीं रुकावट आती है तो गुरुजन इसमें सहूलियत के लिहाज़ से जिससे उचित कार्य निपट जाये, सांसारिक भोग, दुख तकलीफ़ के सहने की शक्ति के लिए दुआ अवश्य कर देते हैं। भोग तो सब संत महात्माओं ने भी भोगे हैं।

9. विभिन्न केन्द्रों पर आचार्य, शिक्षक वर्ग को चाहिए कि सर्वप्रथम स्थानीय सत्संग के नियमित संचालन व कार्य आदि पर ध्यान दें। तत्पश्चात् समीपस्थ स्थान जो उनके क्षेत्र में आते हैं वहाँ सेवा करें।

10. बाहर दूसरें स्थानों पर हमेशा सविवरण प्रस्ताव भेजकर मुख्यालय से पूर्वानुमति प्राप्त करके ही जावें, जिस स्थान पर जाना हो वहाँ के स्थानीय आयोजक (आचार्य, शिक्षक आदि) को साथ लेकर चलें। सत्संग का स्थान–कार्यक्रम आदि भी स्थानीय व्यवस्थापकों को विश्वास में लेकर परस्पर सहमति से निर्धारित करें ताकि कोई विवाद न हो। यदि किसी स्थान पर अपने कार्य से किसी रिश्तेदार, मित्र आदि के यहाँ ठहरना हो तो वहाँ सत्संग सम्पादन हेतु भी पूर्वानुमति प्राप्त कर लें।

11. ऐसा देखने में आया है कि एक स्थान पर ही आचार्य, मॉनिटर अलग–अलग स्थानों पर ठहरते हैं, यह उचित नहीं है। जहाँ भी जायें संयुक्त दौरे करें, सबको साथ लेकर चलें, सत्संग की मर्यादा का ध्यान रखते हुए परस्पर सहयोग, प्रेम एवं सेवा का वातावरण निर्मित करने का प्रयास करें। हर प्रकार के विवाद, एक दूसरे की प्रतिक्रिया, आलोचना जैसी बुराईयों से बचें।

12. यह भी देखने में आया है कि कोई भी सत्संगी किसी कारणवश ऐसी विपत्ति में पड़ जाता है जो अव्यवहारिक है जिससे उसकी बदनामी के साथ सत्संग पर भी आँच आने का अंदेशा रहता है। सत्संगी भाइयों से निवेदन है कि जहाँ तक हो सके ऐसे कार्यों एवं हादसों से कुशलतापूर्वक अपने आपको बचाने का प्रयास करें व किसी प्रकार भी सत्संग का नाम न घसीटा जाये, बदनामी न हो।

13. हमारा मत प्रेम का मार्ग है आपस में सब भाई–बहनों में अटूट प्रेम होना चाहिए, त्याग व सहयोग होना चाहिए, बगैर दीनता को अपनाये हुए हमें अध्यात्म में कभी सफलता नहीं मिल सकती, अतः हम आपस में एक दूसरे से प्रेम करें, त्याग की भावना अपनायें, सदा सहयोगात्मक रहें। हमारे सत्संग में कोई छोटा बड़ा नहीं, सब उस प्रभु गुरुदेव की संतान हैं तथा प्रार्थना करते रहें कि गुरुदेव अपने फ़ैज़ एवं प्रेम से हम सबको सदा भरपूर रखें, हमको शक्ति दें कि उनके बताये आदेशों व निर्देशों का अक्षरक्षः पालन कर सकें।

(ह.) **डॉ. करतार सिंह**
सर्वोच्च आचार्य अध्यक्ष

अन्य आवश्यक र्निणय जो इस वर्ष लिये गये हैं वे इस प्रकार हैंः–

1. हर महीने पूज्य गुरुदेव का प्रोग्राम जो बनता था वह अब नहीं रहेगा और यदि आवश्यक हुआ केवल तभी होगा अन्यथा नहीं। यदि किसी सेंटर पर पूज्य गुरुदेव जायेंगे तो वह सत्संग क्षेत्रीये सत्संग होगा और कितने लोगों का इंतज़ाम किया जाये की ज़िम्मेदारी सेंटर ईंचार्ज की होगी।
2. हम केवल धार्मिक संस्था ही नहीं है, बल्कि समय समय पर रामाश्रम सत्संग की ओर से सामाजिक उत्थान के भी कार्य किये जाते हैं, जैसे बाढ़ पीढ़ीतों की मदद, सर्दीयों में रैन बसेरा या फिर तमनिहमम बंउचे में मदद, गरीबों में गर्म कपड़े बाँटना, दवाखाना चलाना, पढ़ाई के लिये स्कूली बच्चों की मदद, ग़रीब लड़कीयों की शादी के लिये आर्थिक सहायता आदि आदि। अब से यह सारे कार्य अलग अलग न करके रामाश्रम सत्संग के सौजन्य में ही किये जायेंगे। इसके लिये अपने ठलम.रुॅ में

संशोधन करके इंकम टैक्स डिपार्टमेंट में 12ए के अंर्तगत रजिस्ट्रेश्न करवाना है।

3. भारत में रामाश्रम सत्संग की सभी शाखाओं में सदस्यों की दीक्षित्त और अन्य सत्संगी भाई बहनों की संख्या क्या है कि भी एक सूची बनाना आवश्यक है।
4. सत्संग के पूजा के क्रम के संबंध में सदस्यों को कई जगह से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर यह तय किया गया कि हमारे बुजुगों द्वारा सत्संग करवाने का एक क्रम र्निधारित है जिसका सभी को पालन करना चाहिये। विशेष रूप से सेंटर ईंचार्ज की यह ज़िम्मेदारी है कि के इस बात का ध्यान रखें और जो भी कोई सभी बदलाव आया है उसे तुरंत ठीक किया जाये
5. हमारे सत्संगी भाई जो किसी अन्य संस्था से जुड़े हैं वे सत्संग या भण्डारों के अवसर पर उन संस्थाओं के लिये चंदा इक्ठ्ठा करते हैं। हमारे यहाँ किसी अन्य संस्था के लिये चंदा इक्ठ्ठा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। जब रामाश्रम सत्संग द्वारा किसी प्रकार का चंदा या दान नहीं लिया जाता है तो किसी अन्य संस्था के लिये चंदा इक्ठा नहीं किया जा सकता है। हमारे यहाँ केवल भण्डारों पर ही सहयोग राशी ली जाती है और वह भी स्वेच्छा से, किसी तरह की कोई ज़ोर ज़बरदस्ती नहीं की जाती है। इसलिये इस तरह के किसी भी काम को तुरंत बंद करने का फैसला किया गया।
6. फेस बुक और वॉटस्ऐप पर रामाश्रम सत्संग से संबन्धित किसी भी प्रकार का कोई ग्रुप नहीं चलाया जायेगा। पूज्य गुरुदेव के प्रवचन या फोटो आदि का भी इस्तेमाल पूर्व अनुमति से ही किया जा सकता है अन्यथा नहीं। शादि या किसी अन्य कार्यक्रम में यदि पूज्य भाई साहब शामिल होते हैं तो भी कृपया उनका फोटो सोशल मीडिया पर उनकी अनुमति लिये बिना नहीं डाला जाये।

आदेशानुसार

मंत्री

रामाश्रम सत्संग (रजि.) गाज़ियाबाद

प्राचीन मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र

राबिया

तपस्विनी राबिया धर्मपरायण, परम् श्रद्धावान सन्नारी थी। पुरुषों की पंक्ति में यह नारी चरित्र कैसा ? स्वयं हज़रत मुहम्मद साहब ने कहा है –''निश्चय जानो, प्रभु तुम्हारी बाह्य आकृति देखने वाला नहीं, वह तो तुम्हारे मनोभाव और उद्देश्य की तरफ देखता है।'' अर्थात् पुरुष हो अथवा स्त्री, महत्व की बात तो है उनकी धर्म–निष्ठा। पैगम्बर साहब ने कहा है –''मनुष्य की भली बुरी वृत्तियों पर ही उसकी परलौकिक भलाई–बुराई का आधार है।'' पैगम्बर साहब की सहधर्मिणी आयशा बीबी के जीवन से जिस प्रकार शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए उसी प्रकार उनकी अनुगामिनियों के जीवन से भी। भक्त का हृदय परमात्मा में लगा होना चाहिए। फिर वह नर हो अथवा नारी। तुर्किस्तान में धार्मिक उच्च भावना में राबिया अद्वितीय थीं। महात्मा हुसैन बसराई राबिया के बिना आये अपना धार्मिक प्रवचन आरम्भ नहीं करते थे।

तुर्किस्तान के बसरा नगर में किसी गरीब के घर राबिया का जन्म हुआ था। अरबी भाषा में 'राबा' का अर्थ है– चौथा, जिससे मालूम होता है कि वह अपने माता पिता की चौथी पुत्री थीं। राबिया के बड़े होते ही देश में अकाल पड़ा और उनके माता–पिता की मृत्यु हो गई। इससे राबिया का अपनी दूसरी बहनों से भी बिछोह हो गया। एक नीच पुरुष ने राबिया को अनाथ बालिका देखकर एक दुष्ट धनवान के हाथों बेच दिया। दासी राबिया से वह खूब काम लेता और वह काम नहीं कर पाती तो उसे मारता–पीटता। असहनीय अपमान और क्लेश के कारण राबिया एक दिन वहाँ से निकल भागी। भय से भागते–भागते वह रास्ते में गिर पड़ीं और उसका हाथ टूट गया। अपार दुःख में पड़ी राबिया को चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई दिया। ऐसी अवस्था में उसने धरती पर मस्तक टेककर प्रार्थना की– ''हे परमेश्वर! मैं बिना माँ–बाप की अनाथ बालिका एक पराधीन दासी हूँ।

मेरा हाथ टूट गया है तो भी मुझे अपनी इस दुर्दशा का शोक नहीं है। मैं तुझे भूलूँ नहीं और तू मुझ पर प्रसन्न रहे, बस यही एक प्रार्थना है।''

उसके बाद वे एक दूसरे सेठ के पास जाकर नौकरी करने लगी। दिन में मालिक की चाकरी करती और रात को अपने धर्म ग्रन्थ पढ़ती और उपासना करती। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। एक दिन सेठ ने रात को उठकर देखा कि राबिया अपनी कोठरी में बैठी ध्यान मग्न हो रही हैं। ध्यान–मग्न होने पर उसने प्रार्थना की–

''हे प्रभु! तू सब कुछ जानता है, तुझसे कुछ भी छिपा नहीं। मैं सदैव तेरी आज्ञा का पालन करती हूँ और आज्ञा पालन करते–करते ही मरूँ, यही मेरी मनोकामना है। तेरी ही सेवा में मेरा रात–दिन बीते, ऐसी मेरी इच्छा है। पर मैं क्या करूँ? तूने मुझे पराधीन दासी बनाया है, इसलिए मैं सारा समय तेरी उपासना के लिए नहीं दे सकती। हे प्रभु! उसके लिए मुझे क्षमा कर।''

राबिया की ऐसी प्रभु प्रार्थना सुनकर वह सेठ अत्यन्त प्रभावित हुआ। उसने राबिया के मुख पर अद्‌भुत तेज देखा। वह अलौकिक रूप देखकर वह स्तब्ध हो गया। ऐसी पवित्र और पूज्य रमणी से सेवा का काम न लेकर उसकी सेवा मुझे करनी चाहिए, ऐसा विचार उसके मन में उठा। दूसरे ही दिन उसने राबिया को दासत्व से मुक्त करके श्रद्धा–भक्ति पूर्वक कहा– ''आप मेरे घर रहेंगी तो मैं आपकी सेवा करूँगा, आप अन्यत्र जाना चाहें तो आपकी इच्छा।'' मालिक के मन में ईश्वर की प्रेरणा को देखकर राबिया उसे नमस्कार करके विदा हो गईं। वहाँ से जाकर उसने कठोर तपश्चर्या में जीवन बिताया।

वे रात–दिन धर्म ग्रन्थों के पठन–पाठन और उपासना में ही लीन रहती। उन दिनों बसरा में तपस्वी हुसैन रहते थे। राबिया कई बार उनकी धर्म सभा में आती और धर्म चर्चा में भाग लेतीं। एक बार निर्जन वन में जाकर उन्होने योगाभ्यास किया और फिर एक मसजिद में आकर रहने लगीं। आयु का शेषांग उन्होंने मक्का में बिताया और उसी पवित्र भूमि में उनका अवस्थान हुआ। इब्राहम आदम से उनकी मुलाकात और धर्म चर्चा मक्का ही में हुई थी।

जीवन पर्यन्त कौमार्य व्रत का पालन कर ईश्वर भजन में जीवन बिताने वाली देवियाँ इस जगत में गिनती की हुई हैं। इतिहास कहता है कि राबिया आज से बारह सौ वर्ष पहले थीं। अपनी साधना से राबिया ने अपना जीवन ऐसा बना लिया था कि उनका दर्शन करने और उपदेश सुनने के लिए लोगों की भीड़ लगी रहती। उनका निष्कपट ईश्वर–प्रेम, पवित्र चरित्र और अद्‌भुत प्रभाव देखकर तथा उनकी तपस्वी वाणी सुनकर लोग चकित हो जाते, उन्हें नमस्कार करते और उनके नाम श्रवण से अपने को कृतार्थ मानते।

इस परम साध्वी के बारे में महर्षि हुसैन ने कहा है कि उन्होंने बिना किसी की शिक्षा के और बिना किसी गुरु के केवल स्वानुभव से अलौकिक धर्म ज्ञान प्राप्त किया था।

महर्षि हुसैन को राबिया के प्रति अत्यधिक श्रद्धा थी। वे सप्ताह में एक बार प्रवचन करते। श्रोताओं में बहुत से ज्ञानियों के उपस्थित होने पर भी एक बार राबिया के आने में देर होने के कारण उन्होंने अपना उपदेश आरम्भ नहीं किया। इस पर कुछ लागों ने आपत्ति की तो उन्होंने कहा– ''जो शराब हाथी के पेट के लिए तैयार किया गया है उसे मैं चींटी के आगे रखकर क्या करूँ ?''

उपदेश करते–करते जब हुसैन उत्साह के आवेग में आ जाते तो राबिया की ओर देखकर कहते– ''मेरी वाणी में जो तेज सा आ जाता है वह आता है राबिया के हृदय से।''

एक दिन हुसैन ने उनसे पूछा– ''तुम्हारी अभिलाषा विवाह करने की है ?'' राबिया ने उत्तर दिया– ''विवाह तो होता है शरीर का, पर मेरे पास तो शरीर ही कहाँ है ? यह शरीर तो मैं ईश्वर को अर्पित कर चुकी हूँ। यह तो उसी की आज्ञा के आधीन है और उसी के काम में रत है। कहो अब मैं कौन से शरीर का विवाह करूँ ?''

एक बार हुसैन ने राबिया से पूछा– ''तुमने यह उच्च पद कैसे प्राप्त किया ?''

राबिया– ''मुझे मिली हुई सब वस्तुऐं खोकर।''

हुसैन– ''तुम ईश्वर को कैसा समझती हो ?''

राबिया– ''ईश्वर ऐसे है, वैसे हैं ये तो आप जानते हैं। मैं तो उसे अरूप, अमाप जानती हूँ।

एक दिन महर्षि हुसैन ने उनसे कहा– ''परलोक में यदि मुझे एक घड़ी भर भी ईश्वर भजन में प्रमाद होगा तो मैं ऐसा विलाप और रुदन करूँगा कि उससे स्वर्ग के देवों को मुझ पर दया आ जायेगी।''

राबिया– ''आपने बहुत ठीक कहा, किन्तु इस लोक में एक आध घड़ी ईश्वारोपासना में शिथलता आने पर ऐसा आक्रंदन अपने में प्रकट हुआ हो तभी तो परलोक में ऐसा कर सकने की आशा करनी चाहिए।''

तपस्वी राबिया एक बार बसन्त ऋतु में अपनी झोपड़ी में स्वस्थ मन से बैठी थीं। उनकी दासी ने कहा– ''माँ जरा बाहर आकर प्रकृति की शोभा तो देखो।''

राबिया– ''तू एक बार भीतर आकर प्रकृति निर्माता के सौन्दर्य को तो देख।''

किसी ने राबिया से पूछा– ''आप ईश्वर की पूजा करती हैं तब क्या उसे देख सकती हैं।''

राबिया– ''मैं उसे देखती नहीं तो उसकी पूजा भी नहीं करती न ?''

एक दूसरे व्यक्ति ने उनसे पूछा– ''पाप रूपी राक्षस को तो आप शत्रु ही समझती हैं न ?''

राबिया– ''ईश्वर प्रेम में मग्न रहने के कारण न मुझे उससे शत्रुता करनी पड़ी और न कोई लड़ाई।''

एक बार बहुत से लोग एकत्रित थे, राबिया ने उनमें से एक से पूछा– ''तुम किस लिए ईश्वर की पूजा करते हो ?''

वह बोला– ''नरक की भयावह वेदना से छुटकारा पाने के लिए।''

यही प्रश्न दूसरे से करने पर उसने कहा– ''उस रमणीय स्वर्ग के वैभव और सुख की अभिलाषा से मैं भक्ति करता हूँ।''

राबिया– ''भय अथवा लोभ से प्रभु सेवा करना अधूरे भक्त का काम

है। मान लो स्वर्ग या नर्क होते ही नहीं तो क्या तुम प्रभु भक्ति नहीं करते ? सच्चे भक्त की भक्ति लोक परलोक की कामना बिना होती है।''

एक बार एक मनुष्य माथे पर पट्टा बाँधकर उनके पास आया। उसका सिर दर्द कर रहा था। राबिया ने उससे पूछा– ''कितने वर्ष के हो गये हो ?''

''तीस वर्ष का'' उत्तर मिला।

''अब तक स्वस्थ थे या अस्वस्थ ? इतने वर्ष तो कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिए माथे पर कुछ नहीं बाँधा और आज अस्वस्थ होते ही शोक की निशानी में यह बाँध लिया।''

एक बार एक धनिक ने राबिया को फटे–पुराने कपड़े पहने देखकर कहा– ''पूज्य देवि! यदि आप संकेत मात्र भी कर दें तो इस संसार में एक ऐसा व्यक्ति है जो आपकी दरिद्रता दूर कर सकता है।''

राबिया– ''सांसारिक दरिद्रता दूर करने के लिए किसी से कुछ माँगते तो मुझे अत्यन्त लज्जा आती है। देख, इस संसार में उस परमात्मा का राज्य फैला हुआ है तो फिर उसे छोड़कर मैं दूसरे किसी से क्यों माँगू ? मुझे जो कुछ लेना होगा उसी के हाथ से लूँगी।''

एक मनुष्य ने कहा है कि एक बार मैंने राबिया के पास जाकर देखा कि उसके पास केवल एक टूटा हुआ जल–पात्र था। यह देखकर मुझे दुख हुआ और मैंने उनसे कहा कि मेरे बहुत से मित्र हैं, यदि आप आज्ञा दें तो मैं उनके पास से आवश्यक चीजें ला दूँ।

राबिया ने उत्तर दिया– ''तुम भूल करते हो। वे कोई मेरे अन्नदाता नहीं हैं। जो जीवनदाता है वह क्या गरीबी के कारण ही गरीबों को भूल जायेगा ? और धनिकों को उनके धन के कारण याद रखेगा ?''

राबिया के पास बैठकर एक फकीर सांसारिक संकटों का वर्णन करने लगा, जिस पर उन्होंने कहा– ''तुम तो बहुत ही संसार प्रेमी दिखाई देते हो। ऐसे न होते तो ईश्वर की बात छोड़कर ऐसी बात क्यों करते ? एक फकीर संसार की बातों में नहीं पड़ता, इतना ही नहीं वह उनका स्मरण भी नहीं करता। जिस वस्तु को वह ज़्यादा चाहता है उसी की बात ज़्यादा करता है।''

एक बार दो फकीर घूमते–घूमते राबिया के दर्शन के लिए आये। वे भूखे थे इसलिए आपस में बात करने लगे– ''यदि कुछ खाने को मिल जाये तो खालें।''

राबिया के पास सिर्फ दो रोटियाँ थीं फकीरों के लिए वे उन्हें ले आईं। इतने में ही एक तीसरा फकीर आकर रोटी माँगने लगा। राबिया ने वे दोनों रोटियाँ उसे दे दी। यह देखकर उन दो फकीरों को बहुत आश्चर्य हुआ। शीघ्र एक दासी रोटियाँ लेकर आई और राबिया से बोली– ''मेरी मालकिन ने ये रोटियाँ आपके लिए भेजी हैं। राबिया ने गिनकर देखा तो पाया कि आठरह रोटियाँ थी। उन्होंने उस दासी को बिना रोटियाँ लिए लौटा दिया। दासी ने जाकर अपनी मालकिन को सारा हाल कह सुनाया। उसने उन रोटियों में दो और मिलाकर दासी को फिर भेजा। अबकी बार राबिया ने गिनकर देखा कि बीस रोटियाँ थीं। उन्होंने रोटियाँ रख लीं और दोनों फकीरों के आगे रोटियाँ रख दीं। भोजन करते–करते फकीरों ने राबिया से इस बात का रहस्य पूछा तो उन्होंने बताया कि– ''आप दोनों भूखे हैं यह बात मैं जान गई थी। मेरे पास सिर्फ दो रोटियाँ थी इनसे आप दोनों का पेट नहीं भरता इसलिए मैंने वे दो रोटियाँ उस तीसरे फकीर को दे दीं। उसके बाद मैंने प्रभु से प्रार्थना की कि ''हे प्रभु! तुमने कहा है कि मैं दान से दस गुना वापिस देता हूँ, इस बात पर मेरी श्रद्धा है। आपके संतोष के लिए मैंने अभी दो रोटियाँ दान में दी हैं। उन अठारह रोटियों को देखकर मैंने समझा कि भेजने में कोई भूल हुई है पर बाद में बीस रोटियाँ होने से ये दस गुनी हो गईं तो मैंने उन्हें ले लिया।''

राबिया के मुँह से कभी–कभी चीख निकल पड़ती थी। बिना किसी शारीरिक वेदना के ऐसी चीखें मारने का कारण पूछने पर उन्होंने बताया– ''मेरा रोग बाहरी नहीं, भीतरी है। उसे समझना एक दुनियावी आदमी के लिए सहज नहीं और न कोई हकीम ही उसका इलाज कर सकता है। मेरे रोग का तो एक ही इलाज है– उस प्रभु का दर्शन।''

एक दिन राबिया उदास चित्त से बैठी थीं। किसी ने उनकी उदासी का कारण पूछा तो उन्होंने बताया– ''आज सबेरे मेरा मन स्वर्ग जाने के लिए

व्याकुल हो रहा था, पर भीतरी आवाज के रूप में मेरे परम मित्र ने उस इच्छा की अवगणना की, यही मेरी उदासी का कारण है।''

एक दिन एक धनवान ने हुसैन बसराई के मार्फत राबिया की आर्थिक सहायता करनी चाही। इस पर उन्होंने धन को अस्वीकार करते हुए हुसैन को उत्तर दिया– ''इस दुनियाँ में जो आदमी प्रभु की निन्दा करता है उसे भी वह परम उदार परमात्मा अन्न–जल देता है। फिर जिसकी रग–रग में प्रभु प्रेम व्याप्त है, जो हर एक साँस के साथ उसके नाम की धुन लगाये है, उसे क्या वह अन्न–जल देने में कंजूसी करेगा ? जब से मैं उसकी महत्ता जान गई हूँ, मैंने लोगों की ओर से मुँह मोड़ लिया है। जिस धन के बारे में मुझे यह मालूम नहीं कि यह पाप की कमाई है या धर्म की उसे मैं कैसे मंजूर करूँ।

एक बार राबिया बीमार हो गईं तो उनकी तबियत का हाल पूछने के लिए अब्दुल उमर सूफियान उनके पास गए। सुफियान ने कहा– ''देवि, आप प्रार्थना करें। प्रभु आपको जरूर तन्दुरुस्त करेगा।''

राबिया ने उनकी ओर देखकर कहा– ''सुफियान, तुम नहीं जानते कि किसकी इच्छा से रोग पैदा होता है। मेरे इस रोग में क्या उस प्रभु का हाथ नहीं हैं।''

सूफियान बोला– ''हाँ, उसकी ऐसी इच्छा तो होगी ही।''

राबिया– ''इतना मालूम है तो फिर क्यों कहते हो कि उसकी इच्छा के विरुद्ध मैं प्रार्थना करूँ। जो अपना परम मित्र है उसकी इच्छा के विरुद्ध बर्ताव करना क्या एक स्नेही के लिए वाजिब है ?''

सूफियान ने पूछा– ''कुछ खाने की इच्छा है।''

राबिया– ''सूफियान तुम ज्ञानी पुरुष हो, फिर भी ऐसी बात क्यों पूछते हो ? दस वर्ष से अच्छे खजूर खाने की इच्छा है, और तुम जानते हो कि बसरा में काफी अच्छे खजूर मिलते हैं। फिर भी मैंने आज तक खजूर चखे भी नहीं। मैं तो उसकी दासी हूँ। दासी की अपनी इच्छा कैसी ? मेरी जो इच्छा मेरे प्रभु की इच्छा के विरुद्ध हो वह सर्वथा त्याज्य है।''

राबिया की प्रार्थना ऐसी होती थी– ''हे परमेश्वर! तूने इस लोक में मेरे लिए जो कुछ निश्चय किया हो वह तू अपने विरोधियों, नास्तिकों को दे

दे, और परलोक के लिए जो कुछ निश्चय किया हो वह अपने मित्रों–भक्तों को देना। कारण, मेरे अपने लिए तो एक तू ही काफी है। तेरे सिवाय मैं और कुछ नहीं चाहती। मैं यदि नरक के डर से ही तेरी पूजा करती हूँ तो हे प्रभु मुझे उस नरक की आग में जला डालना और यदि मैं स्वर्ग के लोभ से तेरी सेवा करती हूँ तो वह स्वर्ग मेरे लिए हराम हो, किन्तु यदि मैं तेरी प्राप्ति के लिए ही तेरा पूजन करती हूँ तो तेरे परम प्रकाशमान पूर्ण पवित्र, निर्मल, निर्दोष, अपार सुन्दर स्वरूप के दर्शन से मुझे वंचित न रखना।''

उपदेश वचन

1. ईश्वर पर सतत दृष्टि रखना ही ईश्वरीय ज्ञान का फल है।
2. ईश्वर की प्रार्थना से पवित्र हृदय को जो उसी स्थिति में उस प्रभु के चरणों में अर्पित कर देता है और खुद उसके ध्यान–भजन में रत रहता है, वही सच्चा महात्मा है।
3. पापी मनुष्य को जैसा रुचता है वैसा प्रायश्चित वह कर लेता है। वह प्रायश्चित यदि प्रभु के दरबार में स्वीकार हो जाये तो फिर प्रायश्चित का मतलब ही क्या ? उसकी आज्ञा के अनुसार किया हुआ प्रायश्चित ही वह स्वीकार करता है।
4. सम्पत्ति मिलने पर जिस प्रकार लोग आभार मानते हैं, उसी प्रकार दुःख मिलने पर भी उसे उपकार समझ सके तब।
5. हे मानवों! ईश्वर के मार्ग में तो न आँखों की जरूरत है और न जीभ की, जरूरत है पवित्र हृदय की। ऐसा प्रयत्न करो जिससे वह पवित्रता पाकर तुम्हारा मन जाग जाये।
6. बाहर–भीतर से इस तरह जागा हुआ मन एक ऐसे दोस्त का काम देता है कि फिर किसी दूसरे दोस्त की जरूरत ही नहीं रह जाती।
7. पूरे जागे हुए मन का यही अर्थ है कि ईश्वर के सिवा दूसरी किसी चीज पर वह चले ही नहीं। जो मन उस परवर दिगार की खिदमत में लीन हो चुका हो, उसे फिर दूसरे किसी की क्या जरूरत ?

बधाई-सन्देश

आप सभी भाई–बहनों को नववर्ष 2017 की बहुत–बहुत बधाई। ईश्वर से प्रार्थना है कि आप सपरिवार सुखी, स्वस्थ और संतष्ट रहें और ईश्वर प्रेम में बढ़ते उत्साह और आनन्द से दिनोंदिन प्रगति करते रहें।

आपने जो इस अवसर पर मेरे और मेरे परिवार के प्रति शुभकामनायें व्यक्त की हैं, उनके प्रति हम अति आभारी हैं तथा सभी को सप्रेम धन्यवाद देते हैं।

– शक्ति कुमार सक्सेना

राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार–शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम सन्देश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम–सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट–छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम सन्देश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। वार्षिक चन्दा 20 (बीस) रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, 9–रामाकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड, ग़ाजियाबाद (उ.प्र.) 201009 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम सन्देश डाक द्वारा नहीं भेजा जाता है। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जाता है। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

राम संदेश

रजिस्टर्ड ऑफिस

9–रामाकृष्णा कॉलोनी, जी.टी. रोड,
गाज़ियाबाद–201009

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी–66, सैक्टर–6, नोएडा–201301